शिक्षक दिवस के प्रति हमारी प्रतिबद्धता

रश्मि श्रीवास्तव*

एक आदर्श शिक्षक का व्यक्तित्व, डॉ. राधाकृष्णन की वह असीम ताकत थी जिसने उन्हें समाज में न केवल सम्मानित दर्जा प्रदान किया बल्कि शिक्षा के क्षेत्र से लेकर प्रशासनिक क्षेत्र तक उच्च पदों का अधिकारी बनाया। वे व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ देश की उन्नति में भी सहायक बने और संपूर्ण विश्व को अपनी विद्वता से जीवन की वह दिशा दिखा सके, जो कि वास्तव में एक आचार्य, एक शिक्षक का कार्य था। आज हमारा देश उनके जन्म दिवस को 'शिक्षक दिवस, के रूप में मनाता है। वर्तमान आधुनिक भारतीय समाज में आज जब शिक्षण कार्य एक व्यवसाय मात्र बनकर रह गया है, उन स्थितियों में आवश्यक दिखाई देता है कि 'शिक्षक दिवस' के माध्यम से कुछ सकारात्मक संदेश अवश्य शिक्षक वर्ग तक पहुँचाए जाएं। राधाकृष्णन ने जीवन पर्यन्त जिन आदर्शों को सर्वोपरि रखकर एक उत्कृष्ट जीवन-शैली हमारे सामने प्रस्तुत की थी, आज का शिक्षक-वर्ग उससे प्रेरणा लेकर अवश्य ही देश व समाज की उन्नति में सहायक हो सकता है। निःसंदेह शिक्षक दिवस के रूप में हमारी वास्तविक प्रतिबद्धता भी यही है। प्रस्तुत लेख में एक शिक्षक के रूप में डॉ. राधाकृष्णन के व्यक्तित्व में निहित विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है, जो कि एक शिक्षक के लिए प्रेरणा का स्त्रोत रहेंगे।

5 सितम्बर का दिन हम शिक्षक दिवस के रूप में मनाते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के चित्र पर माल्यार्पण कर दीप प्रज्ज्वलित करते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते हैं। क्या इन कार्यक्रमों के द्वारा हम भारत के इस महान शिक्षक को सच्ची श्रद्धांजली दे पाते हैं? नहीं, इन कार्यक्रमों के माध्यम से हम केवल औपचारिकता निभाते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपना जीवन भारतीय दर्शन के लिए समर्पित किया था। एक

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (बी. एड.) महिला विद्यालय, डिग्री कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ

दार्शनिक के रूप में उनका नाम आधुनिक भारत के अग्रदूतों में लिया जाता है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से एक शिक्षक की आदर्श छवि हमारे सामने प्रस्तुत की थी। भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन रहकर भी भारतीय शिक्षक की आदर्श परम्परा 'सादा जीवन उच्च विचार' को उन्होंने चरितार्थ किया था। आधुनिक भारतीय समाज में आज जब शिक्षण कार्य एक व्यवसाय मात्र बनकर रह गया है, अनुशासन व सदाचार की बातें कोरी किताबी बातें रह गयी हैं, इस स्थिति में आवश्यक है कि शिक्षक दिवस के माध्यम से कुछ सकारात्मक संदेश अवश्य शिक्षक वर्ग तक पहुँचाया जाए। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन के साथ-साथ इस दिन के प्रति हम कुछ सकारात्मक प्रतिबद्धताएं भी स्वीकार करें और उनकी प्राप्ति हेतु सकारात्मक प्रयास करें।

यह संभव हो सकेगा जब हम डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के व्यक्तित्व में निहित एक आदर्श शिक्षक के गुणों को आत्मसात् कर सकेंगे। राधाकृष्णन ने जीवन भर जिन आदर्शों को सर्वोपरि रख एक उत्कृष्ट जीवन शैली हमारे समक्ष प्रस्तुत की थी, आज का शिक्षक वर्ग उससे प्रेरणा लेकर अवश्य ही अपने पद की गरिमा को समाज में उचित स्थान दिला सकता है, स्वयं उन्नति के शिखर को प्राप्त कर सकता है। इन स्थितियों में निश्चय ही वह समाज के लिए भी सकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर सकेगा। इस क्रम में सबसे पहले दृष्टि डालें डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जीवनवृत्त तथा उनकी उपलब्धियों पर।

डॉ. राधाकृष्णन का जन्म 5 सितम्बर 1888 में तिरुत्तनि नाम के छोटे से गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम सर्वपल्ली वीर स्वामी तथा माता का नाम सीताम्मा था।[1] उनके पूर्वज पहले सर्वपल्ली गाँव के निवासी थे। उनकी परंपरा के अनुसार सर्वपल्ली उनके नाम का अंग था।[2] इस नाम को उन्होंने बड़ी ऊँचाई तक पहुंचाया। उनके परिवार का वातावरण बड़ा ही धार्मिक, नैतिक व आध्यात्मिक था जिसकी अमिट छाप उनके व्यक्तित्व पर जीवन पर्यन्त रही। हाँ भक्ति भावना को कर्मकाण्डीय पक्ष से ऊपर उठाकर उन्होंने धर्म की वास्तविकता, मूल सिद्धांतों एवं दार्शनिक विवेचना व विश्लेषण को अधिक महत्व दिया। राधाकृष्णन की बाल्यावस्था उनके गाँव में ही बीती, जहाँ उन्होंने अक्षर ज्ञान एवं शास्त्राभ्यास किया। वेदों-पुराणों तक का अध्ययन उन्होंने बचपन में ही कर लिया था। पुस्तकें पढ़ने तथा चिन्तन मनन में उनकी बड़ी रुचि थी। 12 वर्ष की आयु में वे वैलोर के वूर्हिस कॉलेज (Voorhees College, Vellore) में भर्ती हुए और चार वर्ष के बाद मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने गये। यहाँ से उन्होंने स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की।[3] बी.ए. स्तर की एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में हिन्दू संस्कृति के विषय में उन्होंने मात्र चार मिनट के अन्दर ऐसे तर्क प्रस्तुत किये कि विद्वान अंग्रेज़ निर्णायक से ना केवल पुरस्कार

प्राप्त किया, बल्कि प्रशंसा भी प्राप्त की। यहाँ विशेष बात यह थी कि राधाकृष्णन के विचार अंग्रेज़ी सभ्यता और संस्कृति के विरोध में थे किन्तु अंग्रेज़ निर्णायक उनकी मौलिकता, तार्किक क्षमता से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। स्नातक स्तर से ही एक विद्वान दार्शनिक के लक्षण उनके व्यक्तित्व में प्रकट होने लगे थे। आगे चलकर परास्नातक स्तर पर उन्होंने दर्शन विषय का चयन किया और इस चयन के माध्यम से वह राह पकड़ी जिस पर चलकर उन्हें बड़े ऊँचे कीर्तिमान स्थापित करने थे। एम. ए. की उपाधि प्राप्त करने के लिए उन्होंने एथिक्स ऑफ़ वेदान्त (Ethics of Vedant) विषय पर जो शोध निबन्ध लिखा उसकी प्रशंसा में उनके निर्देशक प्रो. हांग ने लिखा है – ''छात्र मुख्य-मुख्य दार्शनिक समस्याओं को भली-भांति समझता है और उनको उसने हृदयंगम कर लिया। जटिल एवं संश्लिष्ट समस्याओं एवं धारणाओं को योग्यता कुशलता एवं विशेष क्षमता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उसका अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार विलक्षण है।''

एम. ए. की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने एक शिक्षक का पद स्वीकार करना सर्वाधिक उपयुक्त समझा और मद्रास के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में दर्शनशास्त्र के प्रवक्ता नियुक्त हुए। इसके उपरान्त वे मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए। इस विश्वविद्यालय में रहते हुए उन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की। 1. द फिलॉसफी ऑफ़ रवीन्द्रनाथ टैगोर 2. द रेन ऑफ रिलीजन इन कन्टेम्परेरी फिलॉसफी।[4] सन् 1921 में सर आशुतोष मुखर्जी ने आपको प्रोफ़ेसर ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी के पद पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्थान दिया। आप लगभग 20 वर्ष तक इस पद पर रहे और इसी अवधि में विदेशों में भी शिक्षण के लिए जाते रहे। आपका इण्डियन फ़िलॉसफ़ी का प्रथम भाग 1923 में प्रकाशित हुआ। जिसमें वेदों, उपनिषदों, गीता, जैनियों के यथार्थवाद का और बुद्ध के दर्शन की मीमांसा का वर्णन है। इसका दूसरा भाग 1927 में प्रकाशित हुआ।[5] शिक्षण, लेखन तथा व्याख्यान – इन तीनों कार्यों के बीच तालमेल बिठाते हुए वे निरन्तर आगे बढ़ते गये। देश, विदेश में एक विद्वान दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध डॉ. राधाकृष्णन सन् 1939 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (B.H.U.) में उप कुलपति के पद पर आसीन हुए। इस पद पर उन्होंने 1948 तक अपनी सेवाएं दीं। सन् 1946 से 1950 तक वे राष्ट्र संगठन की यूनेस्को समिति में भारत के प्रतिनिधि मंडल के नेता रहे। इस बीच 15 अगस्त 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद सन् 1948 में भारत सरकार ने उन्हें विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का अध्यक्ष भी नियुक्त किया।

शिक्षा के क्षेत्र में अपना अभूतपूर्व योगदान देते हुए अपने आगे के जीवन काल में उन्होंने प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के स्वप्न को साकार किया। प्लेटो के स्वप्न 'राजा को दार्शनिक तथा दार्शनिक को राजा होना चाहिए' को

साकार रूप देने की दिशा में पहला कदम आगे बढ़ाते हुए सन् 1949 में उन्होंने सोवियत रूस में भारत के राजदूत पद को स्वीकार किया। 1952 में इस पद का कार्यकाल सफलतापूर्वक पूरा करने के पश्चात् 1952 में वे भारतीय गणतन्त्र के उपराष्ट्रपति चुने गये। जून 18, 1956 को उन्हें मास्को विश्वविद्यालय का सम्मानित प्रोफ़ेसर पद प्रदान किया गया। सन् 1957 में वे पुनः भारत के उपराष्ट्रपति चुने गये। 1960 में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अस्वस्थता के कारण डॉ. राधाकृष्णन ने देश के राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया। सन् 1962 में डॉ. राधाकृष्णन को भारतीय गणतन्त्र का राष्ट्रपति चुना गया और इसके साथ ही संपूर्ण विश्व चमत्कृत हो आनन्द से अभिभूत हो उठा। बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा 'आज फ़िलॉसफ़ी सम्मानित हुई है।' प्लेटो समर्थकों ने कहा कि आज प्लेटो का स्वप्न पूरा हुआ। डॉ. राधाकृष्णन के राष्ट्रपति बनने पर विश्वभर में उनका अभिनन्दन किया गया। 11 जुलाई 1962 में वे ब्रिटिश एकेडमी के सम्मानित फैलो चुने गये। देश विदेश के विश्वविद्यालयों ने भी उनका सम्मान किया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का आदर करते हुए भारत सरकार ने 1967 में उन्हें भारत रत्न से सम्मानित किया। इसी वर्ष राष्ट्रपति पद से निवृत्त होकर वह मद्रास चले गये और वहीं उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। अप्रैल 1975 को इस संसार से विदा लेकर वे चिरनिद्रा में लीन हो गये किन्तु अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व की ऐसी छाप वह हम सब के बीच छोड़ गये कि हम सभी उनके प्रति नतमस्तक हैं।

डॉ राधाकृष्णन आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। एक कुशल प्रशासक, विद्वान दार्शनिक तथा सफल शिक्षक के रूप में उनके द्वारा स्थापित आदर्श अनुकरणीय है। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारतीय दर्शन के लिए समर्पित किया था। उनका मानना था कि सभ्यता की रक्षा के लिए नैतिक शक्ति की आवश्यकता है। भयंकर चुनौतियाँ आधुनिक सभ्यता के ढाँचे को क्षत-विक्षत कर रही हैं। एक आध्यात्मिक मानवतावादी नैतिकता ही उसे बचा सकती है। उन्होंने लिखा था- विश्व ने अनेक ऐसी सभ्यताओं को देखा है। जिन पर युगों की धूल जम चुकी है। हमने मान लिया था कि कैसे ही परिवर्तन और विकास क्यों न हों, पाश्चात्य सभ्यता का ठोस ढाँचा स्वयं में टिकाऊ तथा स्थाई है। किन्तु अब हम देख रहे हैं कि वह कितने भयावह रूप में आरक्षित है। नैतिक होना निरापद नहीं है, बुरी व्यवस्थाएं अपने लोभ और अहंकार के कारण अपना विनाश कर लेती हैं। जो विजेता और शोषक नैतिक नियम की चट्टान से टकराते हैं, वे अन्ततोगत्वा अपने ही विनाश के खड्ड में गिरते हैं अभी जब तक समय है- वैसे अब अधिक समय नहीं रह गया है- हमें चाहिए कि मनुष्य को जो असहाय की भांति अपने सर्वनाश की ओर दौड़ा जा रहा है, रोकने का यत्न करें।[6]

इस चेतावती के साथ उन्होंने हिन्दुत्व के दर्शन में निहित नैतिक जीवन के औचित्य को ऊपर रखा। उन्होंने भारत की बहुमूल्य दार्शनिक विरासत को पश्चिम की अंग्रेज़ी जानने वाली जनता को उपलब्ध कराया और अनेक स्थलों पर भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों की तुलना कर भारतीय दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध की। उन्होंने इस आरोप का खंडन किया कि हिन्दुत्व तत्वशास्त्रीय स्तर पर अन्तर्विरोधों से ओत-प्रोत है। साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया कि मनुष्य की रहस्यवादी अनुभूतियां और कल्पनाएं निश्चित रूप से विश्व तथा जीवन का निषेध करने वाली नहीं हैं। आधुनिक काल के दर्शन में उनका सबसे बड़ा काम भारतीय दर्शन को विश्व में सम्मानित स्थान दिलाने का प्रयास करना था। उन्होंने पाश्चात्य आलोचकों द्वारा भारतीय दर्शन पर लगाए गए आरोपों का सफल एवं तर्कपूर्ण उत्तर दिया। उनकी यह कल्पना थी कि भविष्य में एक ऐसी मानव सभ्यता का उदय होगा जो सर्वात्मभाव की प्रवृत्ति पर आधारित होगी। अपनी इस कल्पना को साकार रूप देने के लिए उन्होंने शिक्षा को एक साधन तथा एक शिक्षक को उसका माध्यम चुना। डॉ. राधाकृष्णन ने इस विशिष्ट कार्य हेतु एक शिक्षक में कुछ विशिष्टताओं का होना आवश्यक माना था और स्वयं के व्यक्तित्व में इन्हें समाहित करने में सफलता भी प्राप्त की। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

ज्ञान के प्रति प्रेम तथा जिज्ञासु

डॉ. राधाकृष्णन ने आदर्श शिक्षक के लिए विद्या के प्रति प्रतिबद्धता की अनिवार्यता को प्रमाणित करते हुए आदर्श शिक्षक को मानवजाति के प्रति उत्तरदायी बताया और कहा शिक्षक अपने और जनता के सेवकों के ऊपर सर्वसत्ताधारी होते हैं, वे अपनी भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं, और जितना भी संभव हो उतनी मानवता की सहायता करते हैं। यही परिपाटी चली आयी है। हमारे सबसे महान शिक्षक वे रहे हैं जिन्होंने हमारी संस्कृति को जीवित रखा है। वे सुदूर देशों की यात्रा के लिए गये और उन्होंने वह सब भी जानने का प्रयत्न किया जो उनकी संस्कृति में निहित है। अर्थात् वे चाहते थे कि एक शिक्षक जिज्ञासु हो। उसे ज्ञान के विकास में भी उतनी ही रुचि लेनी चाहिए जितनी ज्ञान के विस्तार में। हम देखते हैं कि अपने खुद के जीवन में उन्होंने इन आदर्शों को आत्मसात् किया। उन्होंने ना केवल विविध प्रकार का ज्ञान अर्जित किया बल्कि देश-विदेश में उसका खूब प्रचार-प्रसार भी किया।

अपने विषय का समुचित ज्ञान एक शिक्षक के कार्य को परिपक्व बनाता है। इसलिए यह भी आवश्यक है कि शिक्षक अपने विषय का अच्छा जानकार हो। स्वयं डॉ. राधाकृष्णन अपने विषय के अच्छे जानकार थे। वह एक शिक्षक के लिए इस बात को आवश्यक मानते थे कि समाज का शिक्षक वर्ग जिज्ञासु तथा ज्ञान का प्रेमी हो, अपने विषय का उसे अच्छा ज्ञान हो।

दार्शनिक अन्तर्मन

शिक्षा और दर्शन प्रत्येक समाज के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। ऐसा इसलिए कि शिक्षा सामाजिक दार्शनिक उद्यम ही है। बुद्धि और दर्शन शक्ति के बिना शैक्षणिक समस्याओं को हल करने का प्रयास अनिवार्य रूप से मुश्किल समझा जाता है। दर्शन का सानिध्य शैक्षणिक समस्याओं के हल प्रस्तुत करता है।[7] डॉ. राधाकृष्णन ने अपने शिक्षक जीवन में इस विचार को भी चरितार्थ किया था। उनका दार्शनिक अन्तर्मन शिक्षा के क्षेत्र की किसी भी समस्या का हल बड़ी सहजता से खोज लेता था। यही वह आधार था जिससे वह विद्यालयी परिवेश में भी समानतावादी, जनकल्याणकारी नीतियों का समर्थन कर सके।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में भी अति आवश्यक प्रतीत होता है कि एक शिक्षक का अन्तर्मन दार्शनिक हो, ताकि वह आत्मविश्वास के साथ बगैर किसी दुविधा के समस्याओं के समाधान तो खोजे ही उनके क्रियान्वयन हेतु वह किसी प्रकार की दुविधा भी ना रखे। दार्शनिक अन्तर्मन का आश्रय लेकर एक शिक्षक इस पद को अन्य पदों की तुलना में अतिविशिष्टता की श्रेणी तक पहुँचा सकेगा। स्वयं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्वामी बना सकेगा। साथ-ही-साथ एक दिशा निर्देशक का उत्तरदायित्व सही रूप में वहन कर सकेगा।

अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण

डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था शिक्षा का सर्वांगीण और मानवीय होना आवश्यक है। इसमें न केवल बौद्धिक प्रशिक्षण बल्कि हृदय शोधन तथा भावना का अनुशासन भी सम्मिलित रहना चाहिए। हृदय और भावना को उपेक्षित करने वाली कोई भी शिक्षा पूर्ण नहीं समझी जा सकती है।

यहाँ विचार करें, हृदय शोधन तथा भावना के अनुशासन की ये दोनों ही बातें क्या सैद्धांतिक रूप से बार-बार विद्यार्थी के समक्ष दोहराते रहने से हो सकेंगी? नहीं! यह कार्य क्या अध्यापक द्वारा पुस्तकों के माध्यम से समझा दिये जाने से हो सकेगा? नहीं! इस कार्य को करने का एकमात्र उपाय है, शिक्षक का स्वयं का आचरण, उसका स्वयं का चरित्र तथा उसका स्वयं का व्यक्तित्व। डॉ. राधाकृष्णन इसी बात पर सदा जोर देते थे। वे स्वयं उत्तम चरित्र और अनुशासित व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने हमें बताया कि मानव मात्र के मानस को नैतिकता के मूल्यों तक ले जाना आचार्य का कार्य है।[8] अतः आवश्यक है कि अध्यापक स्वयं उत्तम चरित्र व अनुशासित हों। उन्होंने कहा भी था, वे अपने चरित्र के द्वारा अपने विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करते हैं क्योंकि विद्यार्थियों के लिए उसका महत्व उतना नहीं जो वे पढ़ाते हैं, जितना इसका है जो वे हैं।[9] आज का शिक्षक वर्ग डॉ. राधाकृष्णन के इन विचारों को यदि आत्मसात कर सके तो शिक्षा के क्षेत्र की बहुत-सी समस्याओं का समाधान स्वतः हो सकेगा।

शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रेम तथा विद्यार्थियों के प्रति स्नेह का भाव

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त समस्याओं का अवलोकन किये जाने पर एक मुख्य समस्या यह उभर कर सामने आती है कि वर्तमान सामाजिक परिवेश में रोजगार के विभिन्न सम्मानजनक अवसरों में असफल व्यक्ति रोजी, रोटी की जोड़-तोड़ में इस पद को स्वीकार कर रहा है। नि:सन्देह यह स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है। डॉ. राधाकृष्णन के जीवन वृत्त पर नज़र डालने पर हम देखते हैं कि उन्होंने बड़ी निष्ठा के साथ एक शिक्षक होना स्वीकार किया और जीवन के विविध पड़ावों से गुज़रने के बावजूद इस पद के प्रति उनका सम्मान, उनका प्रेम भाव सदैव बना रहा। डॉ. सी. सी. रामस्वामी अय्यर का कहना है कि यदि डा. राधाकृष्णन से पूछा जाता कि उनके जीवन के सर्वाधिक सुख की अवधि कौन-सी थी, तो उन्होंने चेन्नई के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रवक्ता रहने, मैसूर और कलकत्ता विश्वविद्यालय में किये गये कार्य तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहने की अवधि को सर्वश्रेष्ठ बताया होता।

हमारे आज के शिक्षक वर्ग को अवश्य ही उनके व्यक्तित्व के इस पहलू से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। व्यावसायिक निष्ठा तथा व्यावसायिक सफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं एक के अभाव में दूसरे की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। एक शिक्षक अपने कार्य में सफल हो उन्नति तभी प्राप्त कर सकेगा जब वह उससे प्रेम करता हो, उससे जुड़े उत्तरदायित्वों के प्रति कर्तव्यनिष्ठ हो। यहाँ चूंकि बात एक ऐसे व्यवसाय की हो रही है जो विद्यार्थी से संबंधित है। अत: यह प्रेम भाव तथा कर्तव्यनिष्ठा विद्यार्थियों के प्रति भी होनी चाहिए । एक अध्यापक का स्नेह वह सशक्त हथियार है जो विद्यार्थी को स्वत: नतमस्तक कर सद्भाव की प्रेरणा देता है।

जनकल्याणकारी तथा समानतावादी दृष्टिकोण

राधाकृष्णन मानवतावाद के प्रबल समर्थक थे। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को अत्यधिक महत्व देते थे। उनका मानना था कि समाज की रचना ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्तित्व के विकास में कम-से-कम बाधक हो। मूल रूप में व्यक्ति और समाज का कोई विरोध नहीं है, किन्तु यदि प्रश्न व्यक्ति और समाज की तुलना का है तो व्यक्ति पहले आता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक संस्था का अवयव है जहाँ वह सबके साथ मिलकर कार्य करता है, परंतु वह व्यक्ति भी है और उसकी अपनी भावनाएं तथा इंद्रियाँ, इच्छाएं तथा प्रेम व आदर्श हैं। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं साध्य है, उसे साधन के रूप में प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। वह राज्य द्वारा व्यक्ति के दमन के विरुद्ध थे क्योंकि अन्तत: एक राज्य व्यक्तियों द्वारा ही चलाया जाता है। यही आदर्श तथा

व्यवस्था वह एक विद्यालय में भी चाहते थे जहां प्रत्येक बालक के अस्तित्व की महत्ता हो चाहे वह बुद्धिमान हो या सामान्य, चाहे वह निर्धन हो या फिर निम्न जाति का।

डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि विद्यालयी परिवेश में एक शिक्षक इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दे सकता है। अत: अति आवश्यक है कि एक शिक्षक ना केवल जनकल्याणकारी भावनाओं से ओत-प्रोत हो बल्कि समानतावादी दृष्टिकोण का भी समर्थक हो। जिससे वह अपनी कक्षा के सभी विद्यार्थियों को समान दृष्टि से देख सके, उनसे पक्षपात ना करे।

आधुनिक तथा परम्परागत विचारधारा का समन्वित दृष्टिकोण

आज भारत के सामाजिक परिवेश में एक बड़ा प्रश्न जीवन की दिशा का है। भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एक ओर हमें देश के परंपरागत सामाजिक नैतिक प्रतिमानों के प्रति आकृष्ट करती है। वहीं नवीन आधुनिक परिवर्तन आधुनिकता के प्रति। यह समस्या एक शिक्षक के लिए भी है। भारतीय परंपरागत अवधारणा के तहत एक शिक्षक का व्यक्तित्व जहां त्याग, सेवा, प्रेमभाव तथा आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है वहीं आधुनिक संदर्भ एक शिक्षक को छात्र के साथ बराबरी पर लाकर खड़ा कर देता है। वह शिक्षक के व्यक्तित्व के बाह्य स्वरूप को आकर्षक बना दिये जाने पर बड़ा ज़ोर देता है और इस बात का कोई विरोध नहीं करता कि एक शिक्षक भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में शामिल हो दौड़ पड़े। इन दो परस्पर विरोधी अवधारणाओं के बीच एक शिक्षक किस मार्ग का अनुकरण करे? यह एक बड़ा प्रश्न आज के शिक्षक वर्ग के समक्ष मुंह बाये खड़ा है। विचार संबंधी यह दुविधा अन्य पक्षों में भी है। शिक्षक के कक्षागत व्यवहार, उसकी शिक्षण प्रतिविधियों व समस्या समाधान के प्रति उसका नज़रिया इस दुविधा के रहते सही रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकता।

डॉ. राधाकृष्णन ने पूर्व और पश्चिम की इन दोनों विचारधाराओं के बीच एक सेतु का निर्माण करते हुए एक ओर जहां सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श पर अपने जीवन को दिशा दी, स्वयं को आध्यात्मिकता के बिंदुओं से जोड़े रखा, वहीं आधुनिक विकासशील व्यवस्था के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल सके। स्पष्ट होता है कि इस बात की कोई आवश्यकता नहीं कि आधुनिक विकासात्मक संदर्भों के साथ खुद को जोड़ कर हम अपने आपको अपने स्वयं के पारंपरिक नैतिक प्रतिमानों से पूर्णत: अलग कर लें। इन दोनों अवधारणाओं के मध्य संतुलन स्थापित कर जीवन को दिशा दी जा सकती है। राधाकृष्णन ने यही किया और हम सबके समक्ष एक शिक्षक का आदर्श रूप प्रस्तुत कर सके। वास्तव में विचारों का यह संतुलित, समन्वित रूप ही हमारी आज की ढेरों समस्याओं का समाधान है।

देश-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व की समायोजित अवधारणा का समर्थन

डॉ. राधाकृष्णन राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे वे इसे राजनीतिक धर्म कहकर पुकारते थे। उनका मानना था कि राष्ट्रीयता का भाव व्यक्ति को त्याग और बलिदान का पाठ पढ़ाता है। शिक्षण व्यवसाय में भी उन्होंने इस भाव की महत्ता को स्वीकार किया। देश प्रेम के इस भाव द्वारा एक शिक्षक बड़ी सहजता से अपने विद्यार्थियों को त्याग और बलिदान का पाठ पढ़ा सकेगा। उसे देश हित में सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दे सकेगा। यहाँ यह अवश्य ध्यान देना होगा कि एक प्रबल राष्ट्रवादी होते हुए भी राधाकृष्णन ने संकीर्ण राष्ट्रवाद को कभी भी उचित नहीं माना। वह संकुचित राष्ट्रवाद को अत्यन्त घातक मानते थे। उनकी दार्शनिक विवेचनाओं में हमें आध्यात्मिक मानवतावाद तथा विश्व समाज का आदर्श देखने को मिलता है जो कि विश्वबन्धुत्व का द्योतक है।[10] उन्होंने हिन्दुत्व में निहित भारत के आध्यात्मिक आदर्शों और आकांक्षाओं को स्वीकार किया। साथ ही इस बात की ओर हमारा ध्यान भी आकर्षित किया कि बहुलता और विविधता के बीच एकता का पाठ सिखाना हिन्दुत्व की मुख्य विषय-वस्तु है।[11] हम देखते हैं कि उन्होंने देश-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व की समायोजित अवधारणा का आदर्श हमारे सामने रखा। इस आदर्श को उन्होंने अपने दैनिक जीवन में चरितार्थ भी किया। एक देशभक्त के रूप में अपने देश की दार्शनिक उत्कृष्टता को वे संपूर्ण विश्व में प्रचारित करते रहे किन्तु किसी अन्य देश के आत्मसम्मान पर कभी चोट नहीं की। हमें अवश्य उनके इस संतुलित दृष्टिकोण का आश्रय लेकर अपने कार्यों को गति देनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि डॉ. राधाकृष्णन का एक आदर्श शिक्षक का व्यक्तित्व वह ताकत थी जिसने उन्हें समाज में न केवल सम्मानित दर्जा प्रदान किया बल्कि शिक्षा के क्षेत्र से लेकर प्रशासनिक क्षेत्र तक उच्च पदों का अधिकारी बनाया। वे व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ देश की उन्नति में भी सहायक बने और संपूर्ण विश्व को अपनी विद्वता से जीवन की वह दिशा दिखा सके, जो कि वास्तव में एक आचार्य, एक शिक्षक का कार्य था।

भारत की शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु जब भी उन्होंने किसी उत्तरदायित्व का वहन किया तो वहाँ शिक्षक की महत्ता, उसकी योग्यता और उसके आचरण की शुद्धता से कोई समझौता करते नहीं दिखे। वह भारत में शिक्षकों के सामाजिक दर्जे और स्वयं शिक्षकों के आचरण में आयी गिरावट से अत्यन्त खिन्न थे। उन्होंने इस बात पर हमेशा ज़ोर दिया कि विद्यालयों को सबसे अधिक ध्यान अच्छे अध्यापकों पर देना चाहिए। उन्होंने कहा भी था कि अच्छे अध्यापकों की कमी को अन्य कोई चीज़ पूरा नहीं सकती जबकि अन्य किसी चीज़ की कमी को अच्छा अध्यापक अवश्य पूरा कर सकता

है। इनके इसी वाक्य को आदर्श बनाकर हम सही रूप में शिक्षक दिवस के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित कर सकते हैं। हम यदि किसी दूसरे की पहल का इंतजार किये बगैर डॉ. राधाकृष्णन के समान स्वयं अपने गुण, अपनी विद्वता, अपनी कर्तव्यनिष्ठा से इस व्यवसाय के प्रति न्याय कर सके तो स्थिति हमारे अनुकूल होगी, ना कि हम परिस्थितियों के अधीन। यह ठीक है कि आज का शिक्षक वर्ग सामाजिक, आर्थिक व प्रशासनिक स्तर की विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। किन्तु यह भी सत्य है कि इन जटिलताओं के बीच खुद के गरिमामय अस्तित्व को दागदार करना कतई उचित नहीं। शिक्षक दिवस के प्रति हमारी वास्तविक प्रतिबद्धता यही है कि विपरीत परिस्थितियों के बीच भी हम डॉ. राधाकृष्णन द्वारा स्थापित आदर्श शिक्षक की छवि को धूमिल न होने दें और उन आदर्शों को स्वीकृत कर शिक्षक वर्ग को एक बार पुनः भारत में वही उच्च स्थान प्रदान करने हेतु प्रयत्नशील हों जो कि हमारी परंपरा रही है, जो कि हमारा आदर्श है।

संदर्भ

1. सिंह, बी.बी. तथा संदीप ए. बाध. 2008. *रिमेम्बरिंग डा. राधाकृष्णन – ए ग्रेट टीचर, यूनिवर्सिटी न्यूज,* 46, (35), सितम्बर, पृ. 5
2. गुप्त, राम बाबू. 1998. *विश्व के महान शिक्षाशास्त्री,* रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, पृ. 170-171
3. सिंह, बी.बी. तथा संदीप ए. बाध. 2008. *रिमेम्बरिंग डा. राधाकृष्णन – ए ग्रेट टीचर,* पूर्व संदर्भित पृ. 5
4. शुक्ला, रमा. 2000. *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 277
5. .....वही ..... पृ. 277
6. राधाकृष्णन, एस. 1944. *एजुकेशन पोलिटिक्स एंड वार,* पूना इंटरनेशनल बुक सर्विस पृ. 35
7. शुक्ला, सी.एस., आर.एन. सफाया तथा बी.डी. शैदा. 2005. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक,* धनपत राय पब्लिशिंग कंपनी, नयी दिल्ली, पृ-228
8. पाण्डे, रामशकल. 2007. *विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री,* विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
9. भारत सरकार. 1963. *राधाकृष्णन सर्वपल्ली - अकेजनल स्पीचेज एंड राइटिंग, थर्ड सीरीज (1959-62),* पब्लिकेशन डिविज़न पृ- 170
10. वर्मा, वी.पी. 2002. *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ- 414-426
11. राधाकृष्णन, एस. 1945. द *हार्ट आफ़ हिन्दुइज़्म,* जी. ए. नेटसन एंड कम्पनी, मद्रास, पृ-28-64.